ORIGINAL RESEARCH PAPER

Education

KEY WORDS:

# हिंदी उपन्यास साहित्य में पारिवारिक मूल्यों का विघटन

विनोद कुमार एम.ए. हिन्दी, बी.एड., गांव कर्मगढ़ जिला सिरसा, हरियाणा–125055

आज समाज में सब कुछ पैसा है। रिश्ते की जगह भी पैसे ने ले ली है। मर्यादा की डोरी टूटती है तो भले ही टूटे। पिता व पुत्र का रिश्ता अब केवल धन पर आधारित होकर रह गया है। वंश में वृद्धि के लिए पुत्र जन्म जरूरी है। कहते हैं कि उसके बगैर पिता की आत्मा को स्वर्ग नहीं मिलता भटकती रहती है। स्वर्ग में भटकेगी या न भटकेगी यह तो पता नहीं लेकिन जीते जी अवश्य भटकती है जब पुत्र मिलने को भी घर न आये और अपनी पत्नी के साथ अलग घर बसा ले क्योंकि उसके पिता को उसको देने के लिए कुछ भी नहीं है। मृत्यु पर जो घर की शुद्धि तेरह दिन बाद होती है वह पुत्र तेरह दिन तक घर में बेकार नहीं बैठ सकता क्योंकि पैसे का नुकसान होता है इसलिए तीन दिन में ही घर की शुद्धि करवा लेता है और समस्त कर्त्तव्य की इति श्री भी। 'मंजु सिंह के तृष्णा का पात्र पप्पू अपने पिता की मृत्यु पर केवल तीन दिन के लिए ही घर आया –

''पप्पू अपनी गुजराती पत्नी के साथ आया अपने दो वर्षीय पुत्र को लाना उसने उचित नहीं समझा और फिर जब नाना जी हैं तो फिर स्व0 बाबा से क्या सरोकार? जो अपने जीवनकाल में मात्र एक बार ही तो गये थे उससे मिलने और वह भी उसके जन्म के समय पतली सी एक सोने की जंजीर उसे देकर कैसी जग हंसाई करवायी थी भूल नहीं पाया था। पप्पू जिसे उसकी पत्नी ने कब का उतार फैंका था।''

माँ–बाप दिन–रात एक करके बच्चे का पालते हैं हर कष्ट स्वयं सह लेते हैं लेकिन अपने बच्चे को कोई कष्ट नहीं होने देते। वहीं बच्चे जब बड़े होकर पैसे की हवस में माँ–बाप को भुला बैठते हैं तो माँ–बाप की क्या हालत होगी? बच्चे जिन्हें बुढ़ापे का सहारा माना जाता है बुढ़ापा आने पर वे नजर ही नहीं आते। 'चन्दन के फूल' उपन्यास की पात्र एक वृद्धा जिसके दो बेटे हैं लेकिन उनकी शक्ल देखे उसे पाँच वर्ष हो गये हैं। वह अपनी मनः स्थिति जाहिर करती हुई कहती है – ''आज मैं वृद्ध हो चुकी हूँ। मेरे दोनों पुत्र मेरी गोद में खेलकर बड़े हुए। पाँच साल होने को आए, किसी ने मेरी सुध नहीं ली या जरूरत नहीं समझी। जब मेरी मृत्यु हो जाएगी, तो सब यही कहेंगें कि उसकी माँ थी, उसकी पत्नी थी, उसकी बेटी थी और मुझे एक फ्रेम में जड़ दिया जाएगा। इससे बाहर मेरा कोई व्यक्तित्व नहीं है। कोई साधना नहीं है।''

कमलिनी कौल कृत 'तृषिता'में बेटी लालिमा मां की इच्छापूर्ति हेतु अपने भविष्य को निछावर नहीं कर सकी। श्रमा महाराष्ट्रीयन है। सांस्कृतिक मूल्यों को ताक पर रखकर पंजाबी लड़के के साथ भाग जाती है। वह मां से कह उठती है–' मैंने चाहकर भी तुम्हें कभी पीड़ा नहीं दी। पर मैं जानती हूँ मेरे जाने से तुम्हें मर्मान्तक पीड़ा होगी। मुझे क्षमा करना माँ। मैं आपकी इच्छापूर्ति हेतु अपने भविष्य को निछावर नहीं कर सकती हूँ।'

आज नारी पुरानी संस्कारों से विद्रोह करके समाज में अपनी विशेष पहचान बनाना चाहती है। (मुझे चाँद चाहिए) 'सुरेन्द्र वर्मा' की वर्षा जब पिता के सामने ही शराब पीती है तो पिता झल्ला उठते हैं – ''यह वंश की परम्परा के अनुकूल नहीं।'' पिता ने कहा, ''अपनी सात पीढ़ियों में किसी पुरुष ने भी मंदिरा को हाथ नहीं लगाया होगा, स्त्री की तो बात छोडो। परिवार की सात पीढ़ियों में किसी स्त्री ने काम नहीं किया, पर मैं कर रही हूँ।''

घरेलू औरत भी अब विद्रोह पर उतर आयी है। (बेघर) 'ममता कालिया' के परमजीत की पत्नी रमा जब सारा दिन इधर–उधर पड़ोस में बैठकर समय गुजारती है तो वह समझाता है कि घर में रहा करे अखबार पढ़ा करें फिर भी समय बचता है तो अपनी सास के लिए स्वेटर वगैरह बुन दिया करें। इतना सुनते ही रमा बरस पड़ी।

''क्यों पहले क्या कम दिया है जो अब और दूँ। मेरी माँ ने महीनों लगाकर दहेज तैयार की थी। पचासों चक्कर करोल बाग में लगाए थे, तुम्हारी माँ ने एक हाथ से सब कुछ उठाकर बेटी को थमा दिया। वह तो मैंने उतारे होते तो गहनों के एक दो सेट भी दे डालती। मैं कुछ नहीं बुनने वाली।''

इस प्रकार आधुनिक समाज में चाहे वह शहर हो या ग्राम नारी के प्रति पुरुष वर्ग का आज भी वही वासनात्मक दृष्टिकोण है। लेकिन पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव के कारण वह अति स्वेच्छतावादी हो गई है। वह अब पुरुष के हाथ का खिलौना नहीं रही। अत्याधिक बंधन ने उसे विद्रोही बना दिया है।

आलोच्य उपन्यासों में पारिवारिक विघटन का सजीव चित्रण किया गया है। पारस्परिक फूट, कलह तथा आत्म हीनता आदि दुष्प्रवृतियों के कारण पारिवारिक सुख रुपी सूर्य को ग्रहण लगा हुआ है। पारिवारिक विघटन की घुटन प्रेम कुमार मणी की पात्रा भोगती है।

इक्कीसवीं सदी के उपन्यासकार सचेत साहित्यकार रहे हैं। इनके उपन्यासों में परिवर्तित–सामाजिक–व्यवस्था पर कटाक्ष करके अखण्ड राष्ट्र के लिए सुदृढ़ समाज की कल्पना की गई है। उन्नीसवीं शती में 'हिन्दू जाति का प्रत्येक अंग विकृत हो चुका था। समय की प्रगति के अनुसार समाज में आवश्यक सुधार और परिवर्तन करने के स्थान पर हिन्दू परम्परा की लीक पीट रहे थे। गतानुगतिकता और रूढ़िवाद के अन्य भक्त बन बैठे थे।'' जाति–पाँति, दहेज, अनमेल विवाह आदि कई प्राचीन रूढ़ियों तथा कठोर नियम बन्धन समाज को जकड़ कर इसकी प्रगति पर कुठाराघात कर रहे थे। समाज का नैतिक पतन हो जाने के कारण ईर्ष्या, द्वेष, मोह, दैन्य, दौर्बल्य, अशक्ति, हिंसा, स्वार्थासक्ति, अकृति, असाहस, भय, संदेह तथा भोग विलास आदि अनेक विकार समाज में पनप रहे थे। इस प्रकार अनेक व्यसनों से ग्रस्त समाज किंकर्तव्यविमूढ़ सा हुआ अधःपतन की ओर जा रहा था।'' समग्र रूप से विचार करने पर समाज की सृजनात्मक और नवनवोन्मेषशालिनी शक्ति का था। उसमें नए प्राण, नवीन शक्ति और चेतना फूँकने की आवश्यकता थी।

आलोच्य उपन्यासकारों ने समाज के कायर, आलसी, अकर्मण्य, परमुखापेक्ष, धर्मान्ध, अन्धविश्वासी, छूआछूत फैलाने वाले ढ़ोंगी, पाखण्डी, मनचले, निर्लज्ज आदि महापुरूषों पर अच्छी फबतियाँ कसी हैं।'' सुप्त समाज पर प्रतापनगर मिश्र भी खेद प्रकट करते हैं और अपने स्वाभिमान तथा गौरव को भुला देने वाली जाति के सुधार के लिए केवल भगवान का सहारा ढूँढते हैं।[3] बालमुकन्द गुप्त भी अपनी रचनाओं में उन सामाजिक दोषों का दिग्दर्शन कराते हैं, जो जातीय एकता में बाधक हैं। जब तक समाज द्वेष, बैर, विरोध तथा अन्य संकीर्णताओं से विमुक्त नहीं होता तब तक उसका जीवन स्वस्थ नहीं हो सकता।[4] नाथूराम शंकर ने भी जाति की विमूढ़ता तथा उसके अज्ञान की चर्चा की है और मतमतान्तरों की भूल–भुलैया में पड़े समाज का दिग्दर्शन कराया है।[5] आज समाज में से श्री, उत्साह, शूरता, धन, तेज, बल नष्ट हुआ है और आलस्य, कायरता, निरूद्यमता, मूढ़ता, बैर, कलह से घिरकर पतन हो चुका है। 'समाज की अवनति इतनी हो गयी थी कि 'झूठ, दम्भ, विश्वासघात से लोग परधन हरण करते थे, कोई भी अनीति करने में लोग नहीं डरते थे, जो सद्गुण मनुष्य–जीवन की उन्नति के साधन हैं, उन्हें पेट–बाधक मानकर त्याग किया जाता है।'' इसलिए तो समाज में अनेक अवगुणों ने स्थायी रूप से डेरा जमा लिया था। मोह–मदग्रस्त जन समुदाय शिथिल तथा प्राणहीन होकर अपनी जीवनशक्ति क्षीण कर चुका था। देशवासियों का मानसिक पतन इतना अधिक हो चुका है कि भारतीय अधिकारी तथा प्रतिष्ठित लोग उपाधियाँ तथा पदवियाँ प्राप्ति के लोभ से राष्ट्र संघातक कार्य करते हैं।हिन्दू जाति की दयनीय अवस्था पर तरस खाकर भगवतीचरण वर्मा ने हिंदुओं का यथार्थ वर्णन किया है। आलोच्य उपन्यासकार जया जादवानी ने भी माना है कि हिन्दू समाज कुरीतियों का केन्द्र बना हुआ था। साहित्य संगीत तो लुप्त हो गया था। रिश्वतखोरी, मात्सर्य, अनुदारता, गृहकलह के मालिन्य से समाज दुबला बन गया है। इसके साथ ही सामाजिक रूढ़ियों के कारण जीवनधारा का प्रवाह अवरूद्ध होता था। भयनिर्मित अमित रूढ़ियों की कारा ने मानव का मन बाँध लिया था।

पाश्चात्य रंग में रंगे युवक विदेशी धुनों पर नाचना, नशे में चुर रहना, कलबों में रातें बिताना उनकी दिनचर्या का अंग है। (चमेली का फूल) 'डॉ. राकेश सक्सेना' का 'विनोद' जो सदाशिव का पुत्र था 'घर में आचरण तो सही रखता था लेकिन घर से बाहर जाते ही ''विनोद क्लब जाता था 'वहां की रंगीन दुनिया उसे बहुत अच्छी लगती थी। रोज नयी लड़की उसके साथ होती। जिसके साथ वह डान्स करता, उसके नृत्य में कभी रॉक एण्ड रॉल का दौर चलता। कभी वह मुग्ध होकर देखता और कभी उसकी प्रेयसी कैबरे नृत्य करती।''

आज माँ–बाप को भी अपना भवि य ऐसे बच्चों के साथ उज्ज्वल नजर आता है जो पढ़ाई–लिखाई में भले ही कम हो लेकिन दादागिरी में आगे क्योंकि उन्हें मालूम है कि दादागिरी से शिक्षा तो पूर्ण हो ही जायेगी। आगे की जिन्दगी में भी कामयाब वही होगा और जो आदर्शों पर आधारित है वह खुद तो भूखा मरेगा ही साथ में हमें भी मारेगा। 'कृष्णसुकुमार' का हरिहर जो गिरधर का छोटा भाई था। पढ़ाई कम दादागिरी अधिक करता था। माँ–बाप उसी की प्रशंसा करते थे। गिरधर स्वयं से ही बातें करते हुए बुदबुदा रहा है – ''हरिहर धुआंधार भाषण दे सकता है .... हड़ताल करवा सकता है ... दंगे करवा सकता है ... पुलिस पर पथराव करवा सकता है ... बसें फुकवा सकता है। ... ये ही तमाम बातें तो है जो आगे की सीढ़ी मजबूत करती है। ... वह आज छात्र नेता है कल जननेता होगा और परसों राजनेता होगा और परसों राजनेता ..... कौन उसके भाग्य पर संदेह कर सकता है भला?... वह मिनिस्टर के इलावा कुछ और बन ही नहीं सकता।

**निष्कर्ष:**

भारतीय हिन्दू परिवार अथवा सुसंस्कृति के प्रतीक हैं, किस प्रकार सर्वजन संवेद्य हो सकते हैं? हिन्दी साहित्य में अतीतकालीन भारत के पारिवारिक उत्कर्ष के चित्र पुरातन हिन्दू–धर्म, हिन्दू एवं आध्यात्मिक भावना को दृष्टि में रखकर रचे गये हैं। यह हिन्दु दर्शन तथा पारिवारिक संस्कृति भारत के अन्य एकल परिवार क्यों माने? अतः हिन्दुओं की संस्कृति उन्हें संवेद्य नहीं हो सकती। युग की पारिवारिक परिस्थिति में उपन्यासकार इतना उदार न बन सका कि देश के सांस्कृतिक विघटन को अपना सकता। हिंदू–संस्कृति की रक्षा की भावना हिन्दुओं को देश से मुसलमानों को निकाल बाहर करने की उत्तेजना देती थी। वहीं आधुनिक युग में वह हिन्दू जाति, धर्म और समाज की रक्षा तथा उन्नति से संतुष्ट थी। इससे लोगों को देशोन्नति की प्रेरणा मिली। जीवन और उपन्यास का संबंध अत्यंत घनिष्ठ है। यह संबंध कभी प्रत्यक्ष सामाजिक परिस्थितियों में प्रकट होता है तो कभी मानव–चेतना बाह्य स्थूल परिस्थितियों की थपेड़ से अंतर्मुख होकर तज्जन्य निराशा और वेदना की सूक्ष्म अभिव्यक्ति करती है। दोनों ही परिस्थितियों में सांस्कृतिक चेतना निरपेक्ष नहीं रहती। ऐसा कभी नहीं होता कि जीवन की बाह्य परिस्थितियाँ को बदला जायें किंतु साहित्य न बदले। जीवन का प्रतिबिम्ब होने के नाते समाज की संपन्नता–विपन्नता, विलास–संयम, आशा–निराशा, जय–पराजय सभी अन्तरबाह्य परिस्थितियाँ साहित्य में प्रतिबिम्बित होती रहती हैं। उपन्यासकारों ने वर्तमान मूल्य–विघटन पर चिंता जताई है।